दवा परीक्षण में धोखाधड़ी

प्रमोद भार्गव

बिगड़ी तबीयत ठीक कराने के लिए चिकित्सक के पास जाने वाले मरीज़ों की जान संकट में है। संकट भी उस चिकित्सक से है जिस पर वह भगवान मानकर भरोसा कर रहा है। चिकित्सक जब रोगियों को ऐसी दवा देते हैं जो बाज़ार में विक्रय के लिए उपलब्ध ही नहीं है, तो जान लीजिए आपके मर्ज़ का इलाज कर रहा चिकित्सक आप पर शायद ऐसी दवा का प्रयोग कर रहा है जो खतरनाक हो सकती है।

वैसे तो ऐसे प्रयोग पूरे देश में चल रहे हैं, लेकिन मध्यप्रदेश के इन्दौर, भोपाल और ग्वालियर में ये प्रयोग फिलहाल धड़ल्ले से चल रहे हैं। प्रदेश विधानसभा में विधायक पारस सखलेचा एवं प्रताप ग्रेवाल द्वारा पूछे गए सवालों के जबाव में सरकार ने मंज़ूर किया कि कुल 2365 मरीज, जिनमें 1644 बच्चे थे, पर शासकीय चिकित्सा महाविद्यालयों से जुड़े अस्पतालों में ड्रग ट्रायल हुए हैं। ट्रायल के दौरान मौतें भी हुईं।

इसी तरह लखनऊ से राज्य सभा सदस्य डॉ. कुसुम राय द्वारा पूछे गए एक सवाल के जवाब में 15 मार्च 2011 को केंद्रीय स्वास्थ्य राज्य मंत्री ने माना था कि दवा परीक्षणों से पूरे देश में 2008 में 288, 2009 में 637 और 2010 में जून माह तक 597 मौतें हुईं थीं। लेकिन मध्यप्रदेश में अब स्थिति में एकाएक बदलाव आ गया है। स्वास्थ्य समर्पण सेवा समिति के अध्यक्ष डॉ. आनंद सिंह राजे और इंदौर में ड्रग ट्रायल मसले के खुलासे में अहम भूमिका निभाने वाले मध्यप्रदेश रेसिडेंट डॉक्टर्स एसोसिएशन के प्रदेश अध्यक्ष डॉ. आनंद राय के प्रयासों से इस मुद्दे की सीबीआई जांच शुरु हुई और इंदौर के सरकारी व निजी अस्पतालों के 40 चिकित्सकों को ड्रग ट्रायल का दोषी पाया है। यह पूरी रिपोर्ट भारतीय चिकित्सा परिषद को भी आगे कार्रवाई हेतु भेजी गई है। जल्द ही इन चिकित्सकों पर आपराधिक मामले दर्ज होने की उम्मीद है।

दुनिया का पहला दवा परीक्षण 1747 में जेम्सलिंड ने किया था। उन्होंने अपने परीक्षण में पाया कि खट्टे फल खाने वाले सैनिकों को स्कर्वी रोग नहीं होता। बाद में जैसे-जैसे दवाएं कृत्रिम तरीकों से प्रयोगशालाओं में तैयार की जाने लगीं, वैसे-वैसे दवा परीक्षणों की ज़रूरत भी बढ़ती गई। इसी ज़रूरत की पूर्ति के लिए 'अनुबंधित अनुसंधान संगठन' (कॉन्ट्रेक्ट रिसर्च आर्गेनाइज़ेशन, सीआरओ) वजूद में आए। दवा कंपनियां अपनी मनमर्ज़ी के मानदण्ड तय करके सीआरओ के ज़रिए दवा परीक्षण कराने लगीं। सीआरओ ने ही दलालों के माध्यम से चिकित्सा महाविद्यालयों से जुड़े चिकित्सालयों में दवा परीक्षण की शुरुआत की थी। अब तो हालात इतने बदतर हैं कि ये प्रयोग निजी अस्पतालों और प्राइवेट प्रैक्टिशनर्स के माध्यम से भी किए जाने लगे हैं। नई एलोपैथिक दवाइयों के ज़्यादातर आविष्कार होते तो अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्विट्ज़रलैण्ड और जर्मनी जैसे विकसित देशों में हैं किंतु इनके प्रभाव-दुष्प्रभाव जानने के लिए भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफ्रीका, भूटान और श्रीलंका जैसे गरीब व विकासशील देशों के नागरिकों को गिनी पिग की तरह इस्तेमाल किया जाता है।

चूंकि दवा पहली बार मरीज़ों के मर्ज़ पर आज़माई जाती है, इस कारण इसके विपरीत असर की आशंका भी बनी रहती है। दवा जानलेवा भी साबित हो सकती है, यह बात दवा कंपनी और चिकित्सक बखूबी जानते हैं। ये प्रयोग लाचार इंसानों पर किए जाते हैं। परीक्षण के बहाने किए जाने वाले ये प्रयोग चिकित्सकों की नाजायज़ कमाई का बड़ा हिस्सा बनते हैं। एक मरीज़ पर दवा के परीक्षण के लिए डेढ़ से ढाई लाख रुपए तक डॉक्टर को मिलते हैं। एक अनुमान के मुताबिक भारत में ड्रग ट्रायल का कारोबार फिलहाल सालाना 1500 करोड़ रुपए का है जिसके 2012 तक बढ़कर 2700 करोड़ का हो जाने की उम्मीद है। मौजूदा समय में करीब 2000 विभिन्न प्रकार की दवाओं के

क्लीनिकल ट्रायल भारत में पंजीकृत हैं। पूरी दुनिया का हर चौथा दवा परीक्षण भारत के गरीब व लाचार लोगों पर हो रहा है। इसकी पृष्ठभूमि में जो कारण हैं, उनमें भारत में दवा परीक्षण की कम लागत प्रमुख है। प्रशासन तंत्र भ्रष्ट है। और संयोग से कहें अथवा प्राकृतिक व भौगोलिक वजहों से, भारत में मनुष्यों में काफी विविधता उपलब्ध है। इन अनुकूल हालात के चलते भारत में हर मर्ज़ के मरीज़ सरलता से मिल जाते हैं और दवा की जांच भी अन्य देशों की तुलना में जल्दी हो जाती है।

नई दवा के आविष्कार के बाद उसके असर की जानकारी एवं इलाज के लिए दवा की ज़रूरी मात्रा पता करने के लिए दवा को मरीज़ पर आज़माया जाता है। इस प्रक्रिया को चिकित्सा विज्ञान की भाषा में क्लीनिकल ट्रायल कहते हैं। यह चार चरणों में पूरी होती है।

पहले चरण में दवा को जानवरों पर आज़मा कर देखते हैं। इसके बुरे असर का आकलन किया जाता है। इसी दौरान यह पता लगाया जाता है कि दवा की कितनी मात्रा मनुष्य झेल पाएगा। यह असर 40 से 45 रोगियों पर परखा जाता है। दूसरे चरण में 100 से 150 मरीज़ों पर दवा की आज़माइश की जाती है। तीसरे चरण में नई दवा का एक नकली गोली से तुलनात्मक प्रयोग करते हैं। इसे प्लेसिबो ट्रायल कहा जाता है। यदा कदा बीमारी विशेष की जो दवा बाज़ार में पहले से ही मौजूद है, उसके साथ तुलनात्मक अध्ययन-परीक्षण किया जाता है। यह प्रयोग 500 से 1000 मरीज़ों पर होता है। इन तीनों चरणों के कामयाब होने पर इस नमूने को भारतीय दवा नियंत्रक के पास लायसेंस हेतु भेजा जाता है। लायसेंस हासिल हो जाने पर दवा का व्यावसायिक उत्पादन शुरु होता है। फिर दवा बाज़ार में बिक्री हेतु आम मरीज़ के लिए दवा दुकानों पर उपलब्ध कराई जाती है। इसके बाद क्षेत्र विशेष के लोगों द्वारा बड़ी संख्या में दवा का उपयोग शुरू होता है। यह प्रक्रिया दवा परीक्षण के चौथे चरण का हिस्सा है। क्षेत्र विशेष में दवा का परीक्षण इसलिए किया जाता है जिससे स्थानीय जलवायु में दवा के असर की भी पड़ताल हो। इन चारों चरणों के आकलन के बाद जब चिकित्सा विज्ञानी दवा की सफलता की अनुशंसा कर देते हैं तो दवा निर्माता इसे विश्व बाज़ार में उतारते हैं।

दवा निर्माता कंपनियां रोगियों पर ड्रग ट्रायल का जाल बेहद चतुराई से फैलाती हैं। इसके लिए सरकार की नीतियां और कार्य प्रणालियां भी दोषी हैं। ज़्यादातर राज्य सरकारें आम आदमी को बेहतर चिकित्सकीय परामर्श और मुफ्त इलाज उपलब्ध करवाने में नाकाम रही हैं। आज मध्यप्रदेश में 17 हज़ार लोगों पर केवल एक सरकारी चिकित्सक है। सरकारी अस्पताल मुफ्त इलाज का ढिंढोरा चाहे जितना पीटें, हकीकत यह है कि दवाएं मरीज़ को बाहर से ही खरीदनी पड़ती हैं। इसी लाचारी का लाभ उठाकर ड्रग ट्रायल करने वाले डॉक्टर रोगी को मुफ्त दवा का लालच देकर उसे दवा परीक्षण-अध्ययन परियोजना का हिस्सा बना लेते हैं। अंग्रेज़ी में छपे दस्तावेज़ों पर मरीज़ या उसके अभिभावक से अंगूठा अथवा दस्तखत करा लिए जाते हैं। दस्तावेज़ अंग्रेज़ी में होने के कारण मरीज़ यह नहीं समझ पाता कि वह दवा परीक्षण के लिए मुफ्त इलाज का हिस्सा बन रहा है अथवा वास्तविक मर्ज़ के उपचार का। सहमति पर हस्ताक्षर होते ही ताबड़तोड़ एक फाइल बनाई जाती है, जिस पर मरीज़ के नाम के स्थान पर एक गुप्तनाम लिखा जाता है।

यहीं से मरीज़ परीक्षण का विषय बन जाता है और दवा निर्माता कंपनी की नई दवा से उसका इलाज शुरू हो जाता है। यह एक ऐसी नई दवा होती है जो सिर्फ प्रयोग कर रहे डॉक्टर के पास उपलब्ध होती है, दवा-दुकानों पर नहीं मिलती। डॉक्टर मरीज़ को यह हिदायत भी देता है कि वह खाली पत्ता (स्ट्रिप) लौटाता रहे, स्ट्रिप जमा कराने के बाद ही दवा की अगली खुराक उपलब्ध हो सकेगी।

मध्यप्रदेश की औद्योगिक राजधानी और चिकित्सा केंद्र के रूप में विकसित होते महानगर इन्दौर में इसी तर्ज़ पर दवाओं के परीक्षण हुए। महात्मा गांधी स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय इन्दौर से जुड़े एमवाय अस्पताल, चाचा नेहरु बाल चिकित्सालय व मनोरोगी चिकित्सालय में उपचार हेतु आने वाले रोगी इन अस्पतालों के डॉक्टरों की निगाह में चूहे, खरगोश और गिनी पिग से ज़्यादा अहमियत नहीं

रखते। इनमें प्रायोगिक दवा के टीके मरीज़ों पर धड़ल्ले से प्रयुक्त किए जा रहे हैं। एमजीएम मेडिकल कॉलेज के छह डॉक्टरों ने पिछले पांच सालों में लगभग 1700 बच्चों समेत 2400 लोगों पर ड्रग ट्रायल्स किए हैं। बदले में दवा कंपनियों ने पांच करोड़ रुपए दिए।

यही हाल इन्दौर के निजी अस्पतालों में हैं। बेखौफ ड्रग ट्रायल का कारोबार इन अस्पतालों में चल रहा है। कुछ सरकारी मनो-चिकित्सालयों में मनोरोगियों पर कामोत्तेजक दवाइयां भी आज़माई जा रही हैं। इसकी राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जांच भी कर रहा है। इन्दौर दुनिया में इस समय ड्रग ट्रायल हब के रूप में पहचान बना रहा है, जो एक सांस्कृतिक पहचान वाले नगर के लिए शर्म से डूब मरने वाली बात है। इस घिनौने कारनामे को इन्दौर में कितने व्यापक पैमाने पर अंजाम दिया जा रहा है, यह तो इससे ही जाहिर होता है कि गलत तरीके से ड्रग ट्रायल करने में इन्दौर के 40 चिकित्सकों को सीबीआई ने दोषी पाया है।

इन्सान पर ड्रग ट्रायल के गंभीर दुष्प्रभाव पड़ने की प्रबल आशंका रहती है। इस लिहाज़ से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ड्रग ट्रायल के लिए कुछ नियम-कानून एवं मापदण्ड बनाए गए हैं। भारत सरकार ने भी 2005 में ड्रग एण्ड कॉस्मेटिक एक्ट में संशोधन कर नियम व मापदण्ड बनाए हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने भी ड्रग ट्रायल बाबत कुछ कठोर मानक निर्धारित किए हैं, लेकिन धन, उपहार और विदेश यात्रा के लालच में डॉक्टर इनकी बिलकुल परवाह नहीं करते।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् ने अनुसंधानों पर निगरानी रखने के लिए नैतिक आचार संहिता बनाई है, जिसकी शर्तों के तहत समुदाय के आम आदमी को भी प्रतिनिधि के रूप में शामिल किया जाना ज़रुरी है। लेकिन प्रदेश में बनी ट्रायल समितियों में से एक में भी नागरिक समाज का कोई व्यक्ति शामिल नहीं है। कई नैतिकता समितियों में तो पशु चिकित्सक तक शामिल हैं। परिषद् की शर्तों के मुताबिक ड्रग ट्रायल के लिए आने वाले पैसे का स्रोत सार्वजनिक रूप से उजागर होना चाहिए। ड्रग ट्रायल के परिणामों का शोध-पत्रिका में प्रकाशन भी ज़रूरी है। किंतु मध्यप्रदेश के 95 फीसदी डॉक्टरों ने ड्रग ट्रायल के नतीजे किसी पत्रिका में प्रकाशित नहीं कराए।

ड्रग ट्रायल के नियमों के मुताबिक ट्रायल में शामिल मरीज़ का बीमा कराया जाना अनिवार्य है। यहां डॉक्टर चालाकी बरतते हैं कि मरीज़ के कोड नाम से बीमा कराते हैं। मौत होने पर मरीज़ का कोड तो वही रहता है पर मरीज़ को बदल दिया जाता है।

नियमानुसार जिस मरीज़ पर दवा को आज़माया जा रहा है, उसकी जानकारी में यह लाना चाहिए कि अभी यह दवा प्रायोगिक स्तर पर है। दवा के दुष्परिणाम भी सामने आ सकते हैं। परीक्षण के दौरान मरीज़ विकलांग और नपुंसक तो हो ही सकता है, और उसकी मौत भी हो सकती है। यह सब ठीक से जताकर ही मरीज़ से स्थानीय भाषा में मुद्रित सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर कराए जाने चाहिए। इसकी एक हस्ताक्षरित प्रति मरीज़ को भी संभालकर रखने के लिए देनी चाहिए। लेकिन विडंबना देखिए कि इस शर्त का पालन तो कतई नहीं किया जाता।

मरीज़ और उसके अभिभावक अपनी ओर से भी कुछ सावधानियां बरत सकते हैं। डॉक्टर से बीमारी की पूरी जानकारी लें। डॉक्टर या उनके सहायक किसी कागज़ पर दस्तखत कराएं तो उसकी फोटोकॉपी लें। डॉक्टर से मुफ्त में ऐसी ही दवा लें, जिसका कोई ब्रांड हो या फिर वह मेडिकल स्टोर्स पर आसानी से मिलती हो। इलाज के दौरान तबीयत बिगड़ती है तो किसी दूसरे डॉक्टर को भी दिखाएं। कोई डॉक्टर ज़बरदस्ती सहमति के लिए दबाव बनाए या लालच दे तो ड्रग एण्ड कॉस्मेटिक एक्ट 1945 के तहत ड्रग कंट्रोलर जनरल को शिकायत कर सकते हैं।

इस आलेख को लिखे जाने का मकसद यह बताना नहीं है कि ड्रग ट्रायल्स केवल घपलों, घोटालों और नाजायज़ कारोबार का अड्डा है। ड्रग ट्रायल की अपनी अहमियत है, बशर्ते कि वह नैतिक शुचिता और पेशेवर मापदण्डों से की जाए। ऐलोपैथी चिकित्सा पद्धति एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें नई-नई दवाइयों की खोज होती रहती है। इसलिए इन दवाइयों के परीक्षण ज़रूरी हो जाते हैं। इन परीक्षणों के बाद जो दवाइयां बाज़ार में विक्रय के लिए आती हैं, वे

जांची-परखी अर्थात प्रमाण आधारित दवाइयां होती हैं।

लेकिन ड्रग ट्रायल को कुछ चिकित्सक व चिकित्सालयों ने गलत तरीके से मरीज़ों को धोखे में रखकर अवैध धन कमाने का धंधा बना लिया है। इसलिए इसकी विश्वसनीयता पर सवाल खड़े किए जा रहे हैं। नई दवाइयों का परीक्षण भी केवल गरीब, अशिक्षित, अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों पर किया जाता है। यानी दांव पर ज़िंदगी तो इन लोगों की लगती है, जबकि यही वे लोग होते हैं, जो बीमार पड़ने पर इसी दवा को खरीदने की हैसियत नहीं रखते।

ड्रग ट्रायल के सिलसिले में डॉ. एडवर्ड जेनर दुनिया में एक ऐसी अनूठी मिसाल रहे हैं, जिन्होंने खसरा के टीके का आविष्कार करते समय उसको अपने बच्चे पर आज़माया था। क्या हमारे चिकित्सकों में इतना नैतिक साहस है? ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत सजिल्द

स्रोत के पिछले अंक

उपलब्ध हैं